



धर्मशास्त्रों में उल्लिखित प्रतिभा परीक्षा एवं निवर्तमान परीक्षा विधि का तुलनात्मक अध्ययन

मिथिलेश कुमार शुक्ला¹ | डॉ० चारु शर्मा

¹ शोधार्थी- हिमगिरी जी विश्वविद्यालय, देहरादून.

² (असिस्टेंट प्रोफेसर) हिमगिरी जी विश्वविद्यालय, देहरादून.

ABSTRACT

प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति में मूल्यांकन तकनीक प्रतिभा परीक्षा कहलाती थी, जिसकी निवर्तमान परीक्षा विधि से तुलनात्मक विवेचना धर्मशास्त्रों के आलोक में समीचीन प्रतीत होता है। इस विवेचना के तीन पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है-

1. वार्षिक एवं अर्द्धवार्षिक परीक्षा का अभाव: कक्षोन्नति का उपाय।
2. उपाधि या प्रमाण पत्र का अभाव: ज्ञान पिपासु प्रजा व राष्ट्रप्रेम की भावना।
3. शास्त्रार्थ परीक्षा का प्रचलन: प्रतियोगिता परीक्षा का सीमित क्षेत्र।

वस्तुतः प्राचीन धर्मशास्त्रों में परीक्षा प्रणाली का स्वरूप निवर्तमान स्वरूप से एकदम भिन्न था। गुरु आश्रम में एक पाठ के समापन के पश्चात पूरी तरह कंठस्थ होने की जांच के बाद दूसरा, पाठ पढ़ाया जाता था और अन्तिम पाठ के कंठस्थीकरण के प्रमाण के पश्चात ही कक्षोन्नति दी जाती थी। उपाधि या प्रमाण पत्र का अभाव था लेकिन प्रजा विकास पर बल दिया जाता था तथा राष्ट्रप्रेम प्रमुख विषय था। प्रतियोगिता परीक्षा का क्षेत्र सीमित था लेकिन शास्त्रार्थ परीक्षा किसी भी समय किसी भी संस्था में हो जाया करता था, इसलिए पंडित को ब्रह्म ज्ञान की आवश्यक शर्त पर खरा उतरना पड़ता था। निवर्तमान शिक्षण पद्धति में न ऐसे गुरु हैं, न गुरु आश्रम और न वैसे छात्र हैं जो पूरे ग्रन्थ को कंठस्थ कर सकें। समस्त "स्मृति ग्रन्थ" स्मृति आधार पर ही संग्रहित हुए। वेदिक ग्रन्थ अपौरुषेय रहे एवं लिखित परम्परा की उपलब्धि (लेखन कला व कागज कला) बहुत बाद की बात है। अतः प्राचीन शिक्षण पद्धति कंठस्थ करने की पद्धति पर आधारित प्रतिभा परीक्षा एवं प्रजा परीक्षा थी।

KEYWORDS: धर्मशास्त्र, स्मृतिग्रंथ, प्रतिभा परीक्षा, प्रतियोगिता, प्रमाणपत्र

प्रस्तावना:

प्राचीन भारतीय परम्परा में स्थापित गुरुकुल पद्धति के शिक्षार्थियों के मूल्यांकन की प्रविधि प्रतिभा परीक्षा कहलाती थी। जबकि वर्तमान में परीक्षा विधि एवं मूल्यांकन के लिए वस्तुनिष्ठ परीक्षण, विषयनिष्ठ परीक्षण के सहारे मूल्यांकन अकादमिक पाठ्यक्रमों का एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षण के सहारे प्रतियोगी परीक्षा का मूल्यांकन किया जाता है तथा एक नई विद्या सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की आई है। इनमें से किसी एक सृजनशील बालक एवं पूर्ण मनुष्य के रूप में निखार नहीं प्रतीत होता है। जबकि गुरुकुल पद्धति में समावर्तन संस्कार के पश्चात एक पूर्ण मनुष्य बनने के पश्चात द्विज गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। गुरुकुल में छात्र मूल्यांकन की पद्धति वार्षिक या अर्द्धवार्षिक के रूप में नहीं थी फिर भी छात्रों को प्रोन्नत किया जाता था उपाधि या प्रमाण पत्र का भी अभाव था। प्रमाण का मुख्य पहलू "प्रजा" विकास था। इस प्रजा की पहचान शास्त्रार्थ के रूप में होती थी। सदैव राजसभाओं में शास्त्रार्थ हुआ करता था। महर्षि

याज्ञवल्क्य का राजा जनक की सभा का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। इसमें दासियों तत्वयज्ञ उपस्थित हुए थे। महापुरुषों नायको ऋषियों, मनीषियों की बात को छोड़ दिया जाय तो समस्त गुरुकुल में सभी "उपाध्ययों" को प्रतिभा परीक्षा से ही होकर गुजरना पड़ता था।

जबकि निवर्तमान मूल्यांकन पद्धति का सबसे आधुनिक रूप सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के रूप में है लेकिन यह केवल आदर्श है NCERT की पुस्तक Concept Of Evaluation में शैक्षिक उद्देश्य, अधिगम, अनुभव व्यवहार परिवर्तन के पैरामीटर किसी बोर्ड या विश्वविद्यालय में संचालित परीक्षा पैटर्न में नहीं दिया जा रहा है। इसीलिए यदि संभव हो सके तो पीछे मुड़कर देखने की जरूरत है। गुरुकुलों में तो नहीं लौट पायेंगे तो भी वही प्रचलित प्रतिभा परीक्षा को अपना समुचित प्रतीत होता है।

प्राचीन एवं निवर्तमान परीक्षा प्रविधि का तुलनात्मक विवेचन:- प्राचीन एवं वर्तमान परीक्षा प्रविधि के तुलनात्मक विवेचन तीन प्रमुख पहलु इस प्रकार है:-

1 वार्षिक - अर्द्धवार्षिक परीक्षा का आभाव: कक्षोन्नति का उपाय:

धर्मशास्त्रो का काल ई०पू० 200 से 500 ई० तक माना जाता है। इस काल को समीक्षा काल, विशेषाध्यायन काल और मनन तथा प्रवीणता का युग कहा जाता है। इस काल में पहले से चली आ रही अवधारणाओं की सपीक्षा गई। यही वह युग है जब समस्त स्मृति ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। भारतीय षड्दर्शनो का जन्म हुआ। साथ ही साथ बौद्ध-जैन धर्म के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचोरो का प्रतिफलन हुआ। कहने का आशय यह है कि भारतीय चिन्तन धारा का ई०पू० 200से 200ई० तक का काल धर्मशास्त्र युग के रूप में सिद्ध होता है। यह वह युग है जिसमें तर्क एवं तत्व ज्ञान की पर्याप्त प्रगति हुई एवं तथाकथित विदेशी म्लेच्छो (शक पहलव, कुषाण,यवन, ग्रीक) से भारत की संस्कृति का साक्षात्कार हुआ साथ ही देशी संस्कृति में नास्तिक विचार के रूप में बौद्ध,जैन चार्वाक की प्रगति हुई² यहाँ दो संघर्षपूर्ण वैचारिक चिन्तन उभरता है³ एक तरफ प्राचीन श्रुति परम्परा तो दूसरा तरफ नये विचार (धार्मिक आन्दोलन)। प्रस्तुत आलेख में इसकी तुलना न करके नये विचारो 200 बी०सी० से 200ए०एडी० की वर्तमान शैक्षिक मूल्यांकन पद्धति 21वीं सदी की विवेचना प्रस्तुत की जायेगी।

प्रो० अल्तेकर ने प्राचीन भारतीय शिक्षा का सिंहावलोकन करके शिक्षा के इतिहास को चार कालो में बांटकर प्रस्तुत किया है-

- 1 आदिकाल प्रागैतिहासिक काल से 1000 ई० पू० तक (वैदिक शिक्षा)
- 2 1000ई०पू० से 200ई०पू० तक (उपनिषद - सूत्रकालीन शिक्षा)
- 3 200ई०पू० से 500ई० तक-(धर्मशास्त्र कालीन शिक्षा)
- 4 500ई० से 1200ई० तक-(पुराणों एवं निबन्धयुग की शिक्षा)

अतः तृतीय कालीन युग में प्रचलित परीक्षा पद्धति में वार्षिक परीक्षा या अर्द्धवार्षिक परीक्षा का आभाव था लेकिन कक्षोन्नति की आवश्यक शर्त थी। इसी युग में भारत में संघठित शिक्षण संस्थाओ का उदय होता है वौद्ध बिहारो की एवं हिन्दू मंदिरों की पाठशालाएँ खुलने लगी। पहली परीक्षा श्रावणी संस्कार से शुरू हो जाती थी। इसमें सत्रारम्भ (वर्षाऋतु) में प्राचीन ऋषियों-मुनियों के प्रति आभार प्रदर्शन एवं राष्ट्रीय साहित्य को समृद्ध रूप से बनाते हुए ऋषि ऋण का ज्ञान कराया जाता था, इसको किसी परीक्षा से चुकाया ही नहीं जा सकता था। छन्दसामुपाकर्म (वैदिक ज्ञान का उपाजर्जन) संस्कार श्रावण की पूर्णिमा को किया जाता था, जिसे कालान्तर में श्रावणी (नाग पंचमी के दिन) कहा जाता था। पांच छः महीने के सत्र का वैदिक ज्ञान प्राप्ति के पश्चात पौष या माघ की पूर्णिमा को पुनः छन्दसामुत्सर्जन संस्कार (वार्षिक वैदिक अध्ययन की समाप्ति) के बाद कक्षोन्नति होती थी। अतः उपाकर्म से उत्सर्जन संस्कार प्रत्येक

वर्ष के अषाढ, श्रावण, भाद्रपद की पूर्णिमा से लेकर माघ-फाल्गुन (फरवरी-मार्च) की पूर्णिमा के मध्य होता था। एक पाठ के समापन के पश्चात पूरी तरह कंठस्थ होने की जाँच मौखिक परीक्षा से होने के पश्चात् दूसरा पाठ पढया जाता था और अंतिम पाठ के कंठस्थीकरण के प्रमाण के पश्चात ही कक्षोन्नति की जाती थी। अतः “मौखिक परीक्षा” कक्षोन्नति की आवश्यक शर्त थी।² आधुनिक समय में इसे “सलाका परीक्षा” कहा जाता है। इसमें परीक्षार्थी से (200ई०पू. से 200ई०) तक मौखिक परीक्षा हो प्रधान थी। अतः कक्षोन्नति आचार्य व पंडित सभा पर निर्भर थी। इनका प्रमाण मिलने पर अगली कक्षा में प्रोन्नति हो जाती थी। निवर्तमान ऐसी व्यवस्था कही नहीं है। प्रयोगात्मक परीक्षा या मौखिक परीक्षा केवल खानापूरी है

1 समारब्धेस्वन्तेवासिषु- उपाकर्म कुर्वीत..... उत्सर्जनविधि (बौ. गृ. सूत्र. 3.1.2.3)

2 आचार्यात्पादमादते पादं शिष्यः स्वमेधया।

पदं स ब्रह्मचारिभ्यः वाद कालक्रमेण तु॥ (सुभषितम्)

2 उपाधि या प्रमाण पत्र का आभाव: ज्ञान पिपासु प्रजा एवं राष्ट्रप्रेम की भावना

प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति में उपाधि या प्रमाण पत्र का आभाव था वही वर्तमान समय की शिक्षा उपाधि प्राप्त कर लेने से जुड़ी है। धर्मशास्त्र युग में छात्रों की स्फूर्त और प्रखर बुद्धि हेतु सूर्यवासना की विधि था। गायत्री मंत्र का पठन तो सभी गृहस्थ एवं ब्रह्मचर्य के लिए अनिवार्य था। नित्य संध्याकाल में विनती की जाती थी। अग्नि पुराण में है कि यह पुरुष और काल, विष्णु ब्रह्मा महेश या सत्य रज तम के घोटक के रूप में जिसे सभी मानते हैं। मनु स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति दोनों में इसके प्रमाण है -

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मत्र्य च

हिरण्येन सविता रथेनादेवो याति भुवनाति पश्यन् (मनु पर टीका मेंधातिथि 2.38)

विश्वारूपाणि प्रतिमुन्चते कविः प्रासावीभद्र द्रविपदे चतुस्पदे

विनाकमख्यमत्सविता वरेण्योअनु प्रमाणमुषसो विराजति (याज्ञवल्क्य पर टीका अपरार्क 1-15)

अर्थात् ज्ञान पिपासा प्रमुख थी। चूकि इस काल में भारत का सम्पर्क कई विदेशी संस्कृतियों से हो रहा था। इसलिए राष्ट्रीय परम्परा की रक्षा भी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। प्रो० अल्तेकर ने तारा नाथ के हवाले से लिखा कि उपाधियों के वितरण का श्रीगणेश मध्यकाल में हुआ। केवल बंगाल के पाल नरेशो के संरक्षण में प्रमाण पत्र वितरण का साक्ष्य मिलता है एवं तर्क चक्रवती या तर्कलंकार जैसी उपाधियाँ देने का साक्ष्य प्राप्त होता है। यहाँ तक कि नालन्दा

विश्वविद्यालय में भी उपाधि या प्रमाण पत्र का प्रचलन नहीं मिलता। लेकिन पांडित्य परम्परा, प्रजा विश्लेषण एवं राष्ट्रीय परम्परा का निर्वहन करना धर्मशास्त्र युगीन शिक्षा की प्रमुख विशेषता थी।

3. शास्त्रार्थ परीक्षा का प्रचलन: प्रतियोगिता परीक्षा का सीमित क्षेत्र

शिक्षार्थी एवं परीक्षार्थी दोनों के मूल्यांकन की विधा शास्त्रार्थ-परीक्षा थी सबसे गुरु आश्रम में ही शास्त्रार्थ होते थे जिसमें सभी छात्रों की पारंगता की जाँच गुरु करता था। आज अगर हमारी डिग्री को कोई गलत कह दे तो हम चिड़ जाते हैं लेकिन प्राचीन स्नातक उपाधि की शरण नहीं लेते थे। नये-नये खोजपूर्ण प्रश्नों के शास्त्रार्थ से उनके गुणो को जाचा -परखा जाता था। उनके ज्ञान उनके दिमाग व जुवान पर हुआ करते थे। वर्तमान की तरह नोट्स या कॉपी या किताब में नहीं देखना पड़ता था। राजा जनक के दरबार में याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ जग प्रसिद्ध है। (याज्ञवल्क्य स्मृति -डा0 गंगा सागर राव चैखम्बा प्राकशन वाराणसी)। समस्त ग्रन्थों को पद्यात्मक शैली एवं सूत्र - प्रणाली में विकसित करने का मुख्य उद्देश्य यही था कि लोगो को आसानी से याद कर सकेंगे तथा संवाद कर सकेंगे। अतः खण्डन-मण्डन के इस शिक्षण से विधाधियों में प्रत्युत्पन्नमति एवं वक्तृत्व -शाक्ति का विकास होता था।

अतः प्रतियोगिता का क्षेत्र सीमित जरूर था परन्तु आज की तरह अंधी दौड़ वाला नहीं था। वर्तमान प्रतियोगिता परीक्षा पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विद्यार्थी चयन में भ्रष्टाचार से इन्कार नहीं किया जा सकता। केवल उच्च कक्षा में प्रवेश के अवसर पर योग्यता का जाँच होती थी और यदि प्रगति न कर पाते थे उन्हें बीच में अध्ययन समाप्त करने का परामर्श दे दिया जाता था (बसु-इण्डियन टीचर्स आफ दी बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज- पृ0 सं0 47) इस प्रकार प्रतियोगिता का काल सदैव चलता -रहता था।

निष्कर्ष:- प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति की मूल्यांकन तकनीक प्रतिभा परीक्षा के नाम से अभिहित किया जाता है जबकि वर्तमान शिक्षण पद्धति में मूल्यांकन की अनेक विधायें आ चुकी हैं। इतिहास की गति पीछे नहीं खींची जा सकती है। इसीलिए मौखिक परीक्षा, शिक्षण -परीक्षण की लिखित परीक्षा एवं प्रतियोगी परीक्षा तीनों के स्तर में सुधार की जरूरत है। मौखिक परीक्षा जिसे साक्षात्कार कहते हैं। उसका क्षेत्र बहुत सीमित करने की जरूरत है क्योंकि उसमें भाई-भतीजावाद प्रवेश कर जा रहा है। दूसरे, शिक्षण -परीक्षण की चारों विद्यायो (वस्तुनिष्ठ अति लघुतरीय लघुउत्तरीय एवं निबंधात्मक) की महती आवश्यकता है क्योंकि वस्तुनिष्ठ परीक्षण प्रतिभाशाली एवं अभिसारी चिन्तन को अग्रसरित करता है। तथा: विस्तृत उत्तरीय प्रश्न सृजानात्मक

बालक एवं अपसारी चिन्तन को अग्रसरित करता है। अतः प्रशासक एवं -शिक्षक तथा प्रोफेसर दोनों से समाज चलेगा इसलिए शिक्षण परीक्षण का चारों विधायें में वर्तमान में उचित है। तीसरे, प्रतियोगी परीक्षा में पारदर्शिता बरतने की जरूरत है। अतः मौखिक परीक्षा सीमित करने, शिक्षण-परीक्षण में सेमेस्टर प्राणाली एवं वार्षिक प्राणाली दोनों अपने-अपने जगह सही हैं, चिकित्सा शिक्षा से सीख लेने की जरूरत है। जिसमें परीक्षा एवं अभ्यास दोनों हैं। प्रतियोगी परीक्षा से भ्रष्टाचार से निपटना चुनौती पूर्ण है। वैदिक-धर्मशास्त्र युगीन शिक्षा से सीख लेकर इन चुनौतियों का निपटारा किया जा सकता है।

1. प्रो0 अनंत सदाशिव अल्लेकर - प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति अनुराग प्रकाशन वाराणसी
2. दामोदर धर्मानंद कोसाम्बी - प्राचीन भारतीय सभ्यता संस्कृति
3. डा. ए. एल. बाशम - अद्भूत भारत

REFERENCES

1. अल्लेकर, अनन्त सदाशिव, (2014), प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, अनुराग प्रकाशन वाराणसी।
2. मिश्र, जयशंकर, (1974), प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी, ग्रन्थ अकादमी, पटना।
3. मनुस्मृति (2017) (हिन्दी व्याख्या अनुवाद) शिवराज आचार्य, चैखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी।
4. काणे, पी वी (1992) धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, ए30 प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
5. मुखर्जी, राधाकुमुद (2014) हिन्दू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. बीस स्मृतियाँ (1993) हिन्दी व्याख्या श्री राम शर्मा आचार्य, भूमिका खण्ड-1, संस्कृत संस्थान वेदनगर बरेली।
7. शुक्ला, मीना, (2000) स्मृति ग्रन्थों में वर्णित समाज, ईस्टर्न बुक लिंक्स, नई दिल्ली।
8. गुप्ता, एस0 पी0 (2016) मापन-मूल्यांकन एवं सांख्यिकी, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
9. गुप्ता, एस0 पी0 (20015) भारतीय शिक्षा का इतिहास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
10. याज्ञवल्क्य स्मृति (2017) हिन्दी व्याख्या अनुवाद गंगा

सागर राय, चैखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान नई दिल्ली।

11. नारंग, मंजू (2019) मनुस्मृति का समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टन बुक लिंकर्स, नई दिल्ली।

12. अस्थाना, विपिन (2013) मापन-मूल्यांकन एवं सांख्यिकी, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

13. मिश्रा, आर एम, भीरावस्तव, रीना (तृतीय संस्करण)- शिक्षक तकनीक एवं मूल्यांकन, आलोक प्रकाशन, लखनऊ